Sakuntala

शाकुन्तल

1468

संपादक

श्री. पी. जे. जोसफ

(हिन्दी लेक्चरर, मार ईवान्योस कालेज, तिरुवनन्तपुरम)

विद्वान श्री. के. पी. परमेश्वरन पिल्लै B. Sc. (Eng.)

(अध्यापक, राष्ट्रभाषा मंदिर, तिरुवनन्तपुरम)

विद्वान श्री. के. वी. कृष्णनकुट्टि B. A; साहित्यरत्न

(अध्यापक, राष्ट्रभाषा मंदिर, तिरुवनन्तपुरम)

MOHAN PUBLICATIONS.

राष्ट्र भाषा साहित्य समिति

स्टादयूरोड त्रिवेन्द्रम-१

Standard X Book No. 3

3002

शकुन्तला

संपादक

श्री. पी. जे. जोसफ़
(हिन्दी लेक्चरर, मार ईवान्योस कालेज, तिरुवनन्तपुरम)

विद्वान श्री. के. पी. परमेश्वरन पिल्लै B. Sc. (Eng.)
(अध्यापक, राष्ट्रभाषा मंदिर, तिरुवनन्तपुरम)

विद्वान श्री. के. वी. कृष्णनकुट्टि B. A; साहित्यरत्न
(अध्यापक, राष्ट्रभाषा मंदिर, तिरुवनन्तपुरम)

★

प्रकाशक

श्री. के. प्रभाकरन नायर
कावुविला हाउस,
जगति, तिरुवनन्तपुरम ।

दाम ७५ नये पैसे

SHAKUNTALA

(DRAMA)

FIRST IMPRESSION. COPIES 1500

1957

PUBLISHER

SRI. K. PRABHAKARAN NAIR

KAVUVILA HOUSE

JAGATHY. TRIVANDRUM.

All rights reserved]

[*Price 75 nP.*

संपादकीय

हमारे छात्र-जगत् में उपयोगी हिन्दी पुस्तकों के नितांत अभाव ने विद्यार्थियों की बौद्धिक प्रगति को अवरुद्ध किया है। उस अभाव की सर्वांगीण पूर्ति का विनम्र प्रयास है, यह पुस्तकमाला। इसमें रचना की लोकप्रियता तथा अक्लिष्टता के लिए प्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग एवं केरल के छात्रमण्डल की प्रवृद्ध बौद्धिकता के अनुरूप वस्तु-व्यंजना—ये दोनों कार्य अध्यापनकला में अपने विपुल अनुभव के आधार पर हमारे निष्कर्ष हैं।

प्रबंध, नाटक, जीवनी, गल्प आदि विभिन्न रूपों के द्वारा विज्ञान, धर्म्म, कला, संस्कृति—सभी क्षेत्रों का संस्पर्श करके विद्यार्थियों में महत्वकांक्षा जाग्रत कर, एक सांस्कृतिक चेतना फैलाने का प्रयास आप इन पन्नों पर देख सकेंगे। बौद्धिक विकासक्रम में छात्रों के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखकर उसी के अनुरूप सभी पुस्तकों की रचना की गयी है। यहाँ तक कि कठिन शब्दों की अर्थ-सूची तथा मुहावरों का प्रयोग भी क्रम क्रम से प्रस्तुत हैं। स्तर पर स्तर ये मृदुल श्रम-सीकर सागर से चिर सुंदर बन जाएँ।

* * * *

शीघ्रता के कारण यत्र-तत्र जो त्रुटियाँ हुई हैं उन्हें सहृदय पाठक गण क्षमा करें।

इस किताब के बारे में

शताब्दियों के बाद आज भी महाकवि कालीदास के विश्वविख्यात नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम का खूब आस्वदन हो रहा है। आज के रंगमंच पर कालीदास के इस नाटक का अभिनय होना कठिन है। इसलिए आज के रंगमंच की ओर अधिक ध्यान देते हुए इस नाटक की रचना की है। यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन किये हैं, पर मूलकृति की आत्मा को व्यंजित करने में सावधान रहे हैं।

के. वी. कृष्णनकुट्टी.

पहला दृश्य

ऋषि कण्व का आश्रम-वन। कुछ दूर पर कण्व का आश्रम दिखाई पड़ता हैं।

[राजा दुष्यंत धनुष-बाण धारण कर अपने सारथी के साथ प्रवेश करते है।]

राजा:- तापसी ने कहा है कि यह मुनि कण्व का आश्रम है कितना प्रशांत और सुन्दर स्थान है!

सारथी:- ठीक है महाराज! देखिए, शांत होकर बहनेवाली मालिनी नदी और उसके तट पर विश्राम करनेवाले ये मृग। कितना सुन्दर है!

राजा:- [एक ओर देखकर] सारथी, देखो, इस ओर तीन मुनिकन्यकाएँ आ रही हैं। [एक की ओर इशारा कर] शायद वह बीच में आनेवाली मुनि कण्व की बेटी होगी।..... शकुन्तला! ..... [सोचकर] हाँ, सारथी, मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। तुम धनुष-बाण लेकर रथ के निकट जाओ। [धनुष-बाण देता है]। राजोचित वेश-भूषाएँ पहनकर तापसियों से मिलना उचित नहीं।

सारथी:- जो आज्ञा महाराज!

[धनुष-बाण लेकर सारथी का प्रस्थान।]

राजा:- अभी मिलना नहीं चाहिए।..... अच्छा मैं यहीं कहीं छिपकर उनका निरीक्षण करूँ।

[एक वृक्ष की आड में छिप जाता है]

[शकुन्तला अनसूया और प्रियंवदा के साथ प्रवेश करती है। तीनों की कमर पर घडे हैं ।]

शकुन्तला:- [एक फूल को चूमकर] कितना सुन्दर है यह फूल [पानी देती है झट से एक भ्रमर आकर उसको तंग करने लगता है ।]

अनसूया .....प्रियंवदा.....एक भ्रमर.....हाय ! सखियो .....बचाओ ।

प्रियंवदा:- [हंसकर] राजा दुष्यंत आकर बचाएँगे। राजा का कर्तव्य है न प्रजा-पालन ?

शकुन्तला:- हाय ! यह मुझे छोडता नहीं ।

दुष्यंत:- [आड से बाहर आकर] अबलाओं पर आक्रमण करने वाला अत्याचारी कौन ?

अनसूया:- आर्य, ऐसी कुछ बात नहीं। .....आइये, बैठिए । शकुन्तला, अतिथि के लिए फल और जल ले आओ ।

राजा:- शुक्रिया ! अब ज़रूरत नहीं है ।

प्रियंवदा:- बैठिए, आराम कीजिए !

राजा:- [बैठकर] आप भी बैठिए । थक गयी हैं न ?

[सब बैठ जाती है ।]

अनसूया:- क्षमा करना, अकांक्षा से प्रेरित होकर पूछ रही हूँ । क्या, हम जान सकती हैं कि आप किस देश के और किस वंश के हैं ?

राजा:- पौरव राजा का प्रतिनिधि बनकर आया हूँ।

प्रियंवदा:- सखी, शकुन्तला, यदि इस वक्त पिताजी होते तो.....

शकुन्तला:- चुप रहो री।

राजा:- क्या अब मैं कुछ पूछूँ ?

सखियां:- ज़रूर, पूछिए।

राजा:- आपकी यह सखि.....

अनसूया:- यह राजर्षि कौशिक की बेटी हैं। माता हैं मेनका। जब से वे इसे छोडकर चले गये, तब से तात काश्यप इसकी देखरेख कर रहे हैं।

राजा:- मानवियों में इतनी बडी सुन्दरता होगी नहीं।

[शकुन्तला लज्जित हो जाती है। राजा कुछ सोच रहे हैं]

प्रियंवदा:- मालूम होता है कि आप कुछ और पूछना चाहते हैं।

राजा:- ज़रूर। .....क्या आपकी इस सखी को हमेशा इसी प्रकार रहना पडेगा ? ..... या

प्रियंवदा:- नहीं, नहीं। तात काश्यप चाहते हैं कि इसकी शादी एक सुयोग्य व्यक्ति से हो।

[नेपथ्य में से]

"आश्रमवासियो! सावधान! राजा दुष्यंत के रथ से डरकर एक मस्त हाथी आश्रम की ओर आ रहा है।"

सखियां- [उठकर] क्षमा करना स्वामिन्! हम आपकी सेवा कर न सकीं। हम अब लौटती हैं।

राजा:- अच्छा ! डरने की बात नहीं। आश्रम कीरक्षा के लिए पूर्ण प्रबंध किया जायगा।

शकुन्तला:- [चलती हूई] फिर कभी मिलेंगे अतिथि !

[तीनों जाती है। दुष्यंत उन्हीं की ओर देखता रहता है।]

–यवनिका–

दूसरा दृश्य

वही आश्रम-वन ।

[दुष्यंत तथा विदूषक माढव्य का प्रवेश ।]

विदूषक:— आप तो इस जंगल में एक किरात के समान रहना चाहते हैं। लेकिन मैं हर दम जंगली जानवरों के डर से इधर उधर दौड रहा हूँ। सच कहूँ तो मैं थक गया। आराम करने केलिए भी आप मुझको छोडते नहीं।

राजा:—दोस्त, आपके भी आँखें हैं ?

विदूषक:—क्या ?...यह कैसा सवाल है ? देखिए इन आँखों में। क्या, ये आँखें नहीं ?

राजा:—सिर्फ आँखें होने से कुछ नहीं बनता, देखने की शक्ति भी तो चाहिए ! हा ! हा ! [हंसता है।]

विदूषक:—मैं आपको देखता हूँ, यह वन देखता हूँ और सब कुछ !

राजा:—लेकिन जो देखना चाहिए उसको देखते नहीं.....शकुन्तला! कैसी सुन्दरी है !! वह प्रकृति-सुन्दरता का साकार रूप है।

विदूषक:—हूँ, आखिर मुनि-कन्या को ही आपने देख लिया है !... मालूम होता है कि आप महल लौटनेवाले नहीं।

राजा:—कैसे हो सकता है ? वह एक नव सुमन है !

विदूषक:— तो उसे विरस मुनियों के हाथों सौंपना अनुचित होगा ही।

राजा:—न जाने क्यों, एक बार देखते ही मैं उसपर आकृष्ट हो गया। हमारी पहली मुलाकात में ही चार आँखें हो गयी थीं। ..... इच्छा न होने पर भी उसको लौटना ही पड़ा। [भावावेश में आकर] कुछ दूर चलकर वह खड़ी रह गयी। क्या उसके मृदुल पदतलों में कुशाग्र चूभ तो नहीं गया ?..... वहीं से उसने मेरी ओर प्रेम-भरी आँखों से देखा। इसके लिए उसने अपना वत्कलांचल पेड की डाल से उलझा दिया। फिर उसको सुलझाने के बहाने मेरी ओर मुड गयी। कितनी बडी चालाकी से उसने यह काम किया था।

विदूषक:— आप सुन्दरता में आकृष्ट हैं और मैं यहाँ अकेले असुन्दर राक्षसों के डर से मर रहा हूँ। किसी न किसी प्रकार महल लौटना—यही मेरी एकमात्र इच्छा है।

राजा:— मैं भी आपसे यही कहना चाहता था। देखिए, आपको आज ही राजधानी लौटना पडेगा।

विदूषक:—हा ! हा !! लड्डू खा सकता हूँ, पेट भर। .....अच्छा, बताइये ; बात क्या है ?

राजा :— महल से अम्मा ने दूत भेजा है। पुत्र-वत्सला माता पुत्र-पिंड-पालन व्रत कर रही है। उसमें मुझे भाग लेना चाहिए। लेकिन.....

विदूषक:— लेकिन ? ..... [सोचकर] समझा ! आपका व्रत तो दूसरा है, है न ?

राजा:— ठीक ! ..... नहीं, नहीं ; मैं चाहता हूँ कि कुछ और..... दिन यहीं रहूँ। ..... इसलिए आप महल में जाइये और अम्मा का पुत्र बनकर व्रत विधियों का पालन कीजिए। हम दोनों में क्या फरक है ? आखिर आप भी तो मेरी अम्मा के पुत्र-से ही हैं।

विदूषक:— अच्छा, मैं जाऊँगा और सब कुछ ठीक करूँगा। ..... पर यह न समझना कि मैं राक्षसों से डरकर यहाँ से चले जा रहा हूँ।

राजा:— छिः, ऐसा कभी न होगा। ..... एक बात और

विदूषक:— क्या ?

राजा — और आप भी ऐसा न मानना कि मैं उस तापसी कन्या के प्रेम में फँसकर यहाँ रहता हूँ। वास्तव में मैं तपोवन और तापसों की रक्षा करने केलिए ही यहाँ रहता हूँ। आखिर वह नादान लडकी कहाँ और मैं राजा कहाँ

विदूषक:— ठीक, ठीक ! ..... तो यात्रा की तैयारी की आज्ञा दीजिए। मैं अभी तैयार हूँ।

राजा:— अच्छा ठीक करता हूँ आइये।

[दोनों का प्रस्थान]

[अनसूया तथा प्रियंवदा के साथ शकुन्तला का प्रवेश।]

प्रियंवदा:— शकुन्तले ! आज तुमको कौनसी बीमारी आ गयी ? बताओ तो, बीमारी जानकर ही इलाज कर सकती हैं।

अनसूया:— बीमारी ! वह तो प्रेम की बीमारी है। हमने

पुराणों में पढा है न इस प्रेम की रीति के बारे में ?

प्रियंवदाः— ढीक है। सखी, तुम अपने शरीर का ध्यान क्यों नहीं करती ? तुम्हारे कोमल अंग दिन-ब-दिन दुबले हो जाते हैं। लेकिन तुम्हारी सुन्दरता ही एकमात्र वस्तु है जो तुम्हें छोडती ही नहीं।

शकुन्तलाः— अपनी परेशानी की बात मैं किसको सुनाऊँ ? ... तुम दोनों को सुनाऊँ तो वह तुम्हारे लिए मुसीबत होगी।

प्रियंवदाः— इसीलिए ही हम कहती हैं कि सारी बातें हमें सुना दो। प्रेम करनेवाले दुःख को आपस में बाँट लेंगे तो उसका बोझ कुछ हलका बन जाता है।

शकुन्तलाः— मेरी प्यारी सखियो ! हमारे तपोवन की रक्षा करनेवाले उन राजर्षी को देखते ही मैं उनकी बन गयी। वह चिन्ता रात दिन मुझे सताती रहती है।

अनसूयाः—हूँ, अब समझी ! बताओ, बताओ।

शकुन्तलाः—तुम लोगों को मुझपर प्रेम हो तो उनसे मिलकर मेरी प्रतीक्षाओं को सफल बनाने की कोशिश करो। नहीं तो ...

अनसूयाः—तेरी इच्छा सही है। महानदी समुद्र को छोडकर और कहाँ जाएगी ?

प्रियंवदाः—जूही की लता केलिए सुयोग्य सहारा रसाल ही होता है।

अनसूयाः—सो तो ढीक। लेकिन इसकेलिए मार्ग है क्या ?

प्रियंवदा:—मार्ग है । [सोचकर] अच्छा, राजा तो शकुन्तला पर जरूर आकृष्ट हो गये हैं। इन दिनों वे चिन्ता से विकल हो रहे हैं।

अनसूया:— इसलिए ?

प्रियंवदा:— इसलिए .....उनके नाम एक प्रणय-पत्रिका लिखनी पड़ेगी। मैं उसको पुष्प की थोली में छिपाकर उनके हाथ पहुँचा दूँगी। ..... क्यों ?

अनसूया:— वाह ! कैसी चाल चलती है! क्यों शकुन्तला, ठीक है न ?

शकुन्तला:— तुम्हारे मत का मैं क्या विरोध करूँ ?

प्रियंवदा:— तो शीघ्र ही एक सुन्दर सुकोमल और अर्थपूर्ण कविता लिख डालो।

शकुन्तला:— लिखूँगी..... .....लेकिन.....सोच रही हूँ कि उनकी इच्छा क्या होगी ?

अनसूय:— तन और मन को शीतल बनानेवाली शरद्-चन्द्रिका का तिरस्कार करनेवाला भी कोई होता है ?

शकुन्लता:— अच्छा ! तो, तुम्हारे कहे अनुसार ही करूँगी।

अनसूया:— जल्दी कविता लिखो।

शकुन्तला:— कविता मेरे मन में है। लेकिन लिखूँ किस पर ?

प्रियंवदा:— लो, इस मृदुल कमल-पत्र पर नाखून से लिख डालो

[कमल पत्र लेकर देती है]

शकुन्तला— [कुछ सोच रही है। फिर कमल पत्र पर लिखने लगती है।] अच्छा, सुनो। सुनकर बता देना कि ठीक है कि नहीं।

दोनों:—सुनाओ। [ध्यान से बैठती हैं।]

शकुन्तला:— [पढ़ती है]

" तेरा आराम मेरे प्रतिम

मैं अब तक न जान सकी।
निशि दिन, हर दम ताप दे रही
जलती ज्वाला अंगज की॥ "

[दुष्यंत सहसा प्रवेश करता है]

राजा:— सुन्दरी, तुझे अंगज ताप ही देते हैं। लेकिन वे मुझे जला रहे हैं।

सखियां:— सुस्वागत! [उठ खड़ी हो जाती हैं] उचित समय पर आप पहुँचे हैं।

[शकुन्तला उठ खड़ी हो जाती है।]

अनसूया: — आप इस चट्टान पर बैठिए।

[राजा बठते हैं]

प्रियंवदा:— अब आप दोनों का राग व्यक्त हो गया है। फिर भी मैं शकुन्तला की आत्म-सखी के रूप में कुछ कहने के लिए मज़बूर हूँ।

राजा:— बताइये।

प्रियंवदा:— आपका कर्तव्य तो दुःखियों के दुःख का नाश करना है। इसलिए मेरी सखी के दुखों का नाश कर उसकी रक्षा कीजिएगा।

[शकुन्तला लिढकर प्रियंवदा की ओर देखती है और फिर सिर नवाती है।]

अनसूया:— आर्य, सुना है कि राजाओं के कई रानियाँ होती हैं हमारी यही प्रार्थना है कि शकुन्तला हमेशा सुखी रहे।

राजा:— भद्रे! राजा होने पर भी मेरे लिए सिर्फ दो ही आश्रय हैं— एक भूमि है और दूसरी आपकी यह सखी।

सखियां:— हम खुश हुईं।

प्रियंवदा:— [शकुन्तला तथा अनसूया की ओर कटाक्षकर] अनसूया, देखो, वह मृगशावक अपनी अम्मा को खोज रहा है। आओ तो, हम उस बेचारे को माता के पास पहुँचा देंगी।

[दोनों जाने लगती हैं]

शकुन्तला:— सखी! मैं अकेली हूँ। ..... ठहरो।

सखियां:— सारी पृथ्वी का रक्षक तेरे पास है न?

[हंसती हुई चली जाती हैं।]

शकु:— दोनों चली गयीं?

राजा:— [उठकर] प्रिये, शकुन्तले, तेरी हर सेवा के लिए मैं यहाँ प्रस्तुत हूँ।

—यवनिका—

तीसरा दृश्य

आश्रम-वन का एक लता-निकुंज।

[शकुन्तला और दुष्यंत बातें कर रहे हैं।]

राजा :— प्रिये! आज तक मैं यहीं रहा। आज मुझे ज़रूर राजधानी लौटना ही पड़ेगा।

शकुन्तला:— आर्य! मैं क्या कहूँ? आपको रोकने की शक्ति मुझ में नहीं है। उसी प्रकार आपको छोड़ने की इच्छा भी नहीं होती।

राजा:— प्रिये, परेशान होना मत। सिर्फ मेरा शरीर इस आश्रम को छोड़कर चला जाता है। लेकिन मेरा मन हमेशा यहीं रहेगा — इन लता-निकुंजों के अन्दर तुम्हारे ही दिल के साथ।

शकुन्तला:— कब तक मैं आपकी प्रतीक्षा करूँ?

राजा:— कुछ दिन। ..... वहाँ पहुँचते ही मैं राजोचित विधि के अनुसार तुम्हारेलिए सेवकों के साथ रथ भेजूँगा। तब तक मेरी याद गार के रूप में यह अंगूठी तुम्हारे पास रहे।

[अंगूठी उतारकर शकुन्तला को पहनाता है]

शकुन्तला:— यही मेरे प्राण हैं। इसी को देखते देखते मैं हर क्षण बिताऊँगी।

राजा:— प्रिये ! अब मैं जाता हूँ।

शकुन्तला:— आर्य ! मैं ने अपनी ज़िन्दगी आपके पैरों तले अर्पण की है। यही प्रतीक्षा है कि आप उसको ठुकराएँगे नहीं। आपकी वंशमहिमा पर मुझे गर्व है।

राजा:— यह शंका क्यों ?

शकुन्तला:— आर्य ! नारी अपने को अर्पण करना ही जानती है।

राजा:— तो, तुम यही विश्वास करो कि अर्पित वस्तु को उचित रूपसे स्वीकार करना भी दुष्यंत जानता है। अच्छा प्रिये, समय बहुत हो चुका। अब मैं चला।

[दुष्यंत जाता है। कुछ देर शकुन्तला उसी ओर देखती रहती है। फिर अंगूठी की तरफ देखते–देखते चली जाती है।

अनुसूया तथा प्रियंवदा का प्रवेश।]

अनसूया:— देखो, सखी प्रियवदे, शकुन्तला की क्या हालत हो गयी है।

प्रियंवदा:— बेचारी, विरह, वेदना से तडपती होगी। ... उस वट वृक्ष के तले बैठकर वह राजा की याद में रो रही है।

अनसूया:— वह बार बार उँगली पर क्या देखती है ?

प्रियंवदा:— शायद राजा की दी हुई अंगूठी होगी।

अनसूया:— आओ सखी, हम उसे समझाने-बुझाने की कोशिश करेंगे। आओ।

प्रियंवदा:— ना, ना ! ऐसा न करना चाहिए। विरही जनों को एकांतता ही उचित है। कुछ देर वह वहीं बैठकर अपने दिल का बोझ कुछ हलका करे। तब तक हम यहीं बैठकर माला गूँथेंगी।

अनसूया:— अच्छा।

[दोनों माला गूँथने लगती हैं।]

नेपथ्य में:— "अरी! अतिथियों का अनादर करनेवाली! तुम जिसकी याद में स्वयं भूल बैठी हो, वह व्यक्ति तुम्हें भूल जाये!"

[प्रियंवदा और अनसूया झट से उठकर चारों तरफ देखती हैं।]

प्रियंवदा:— हाय! अनसूया, देखो, दुर्वासा ने शकुन्तला को शाप दे दिया। बेचारी राजा की याद में मुनी की खातिरदारी कर न सकी।

अनसूया:—अब हम करें क्या? दुर्वासा का शाप ऐसा वैसा कभी न होता।

प्रियंवदा:—अच्छा, तुम यहीं रहो। मैं अभी अयी।

[प्रियंवदा जाती है। अनसूया माला गूँथती हुई प्रियंवदा की राह देखती रहती है।

कुछ देर बाद आश्वाससूचक निश्वास छोडती हुई प्रियंवदा का प्रवेश।]

प्रियंवदा:—हाय ! लंका जीत ली ।

अनसूया:— [माला छोडकर] क्या हुआ ? बात क्या है ?

प्रियंवदा:—मैं दौडती दौडती मुनि के पैरों पर जा पड । उनसे सभी हाल कह सुनाये । मैं ने उनसे शाप को उठाने की बिनती की ।

अनसूया:—तब क्या उत्तर मिला ?

प्रियंवदा:—उत्तर मिला कि एक बार शाप दे दिया तो उठा लेना मुश्किल है ।

अनसूया:—तब क्या, शाप ऐसा ही रहेगा ?

प्रियंवदा:—शाप ऐसा ही रहेगा । पर उन्होंने कह दिया कि कोई निशानी दिखाने से दुष्यंत को शकुन्तला की याद आएगी

अनसूया:—तब तो ठीक है । ..... शकुन्तला के पास तो राजा की अंगूठी है ।

प्रियंवदा:—अनसूया, एक बात याद रखना । .....शकुन्तला को कभी इस शाप की खबर न मिले । जब वह दुष्यंत के महल में जाएगी तब हम सब कुछ ठीक कर देंगे..... अच्छा, अब माला गूँथें ।

[दोनों माला गूँथने लगती हैं ।]

—यवनिका—

चौथा दृश्य

आश्रम-वन ।

[अनसूया अकेले बैठी माला गूँथ रही है । प्रियंवदा का प्रवेश ।]

प्रियंवदा:— [प्रवेश कर] अरी, सुनी खबर ?

अनसूया:— कौन सी खबर ?

प्रियंवदा:— आज शकुन्तला अपने प्रिय के यहाँ जा रही है ।

अनसूया:— जा री पगली ! .....राजा अभी तक लौट न आये, और शकुन्तला स्वयं उसके यहाँ जा रही है ?

प्रियंवदा:— हाँ, हाँ ! तुम क्या जानो। मैं अभी तात काश्यप के आश्रम से लौट रही हूँ ।

अनसूया:— तो राजा लौट आये, या उन्होंने किसी को भेजा है ? मैं ने तो नहीं देखा । ..... यद्यपि लौट आये होंगे तो भी तात कण्व की आज्ञा के बिना .....

प्रियंवदा:— राजा का कोई व्यक्ति अभी तक राजधानी से आये नहीं । तो भी तात की अनुमति मिली ।

अनसूया:— [माला छोडकर उत्सुकता से] कहो तो जरा पूरा पूरा ।

प्रियंवदा:— तो सुनो। तात जब सोमतीर्थ से लौट आये, तो उनको अपनी तपःशक्ति से ज्ञात हुआ कि शकुन्तला का विवाह हो चुका है। उन वात्सल्यमूर्ति को बडा ही आनन्द हुआ ।

अनसूया:— ऐसी बात ? मैं तो डर रही थी कि .....

प्रियंवदा:— डरने की क्या बात है ? उनको आनन्द इसलिए हुआ कि अपनी बेटी का संबन्ध एक उचित व्यक्ति के साथ ही हुआ है। उन्होंने बडे ही प्रेम और वात्सल्य के साथ शकुन्तला को गले से लगा लिया और उसको आशिष भी दी।

अनसूया:— शकुन्तला अब राजधानी क्यों जा रही है ?

प्रियंवदा:— दुःखी शकुन्तला को आश्वास दिलाने केलिए उन्होंने ऐसा निश्चय किया था। आज ही राजधानी को भेजी जाएगी।

अनसूया:— शकुन्तला के इस भाग्य पर खुश तो हूँ।..... लेकिन, सखी, सोचो तो कल से हम यहाँ कैसे रहेंगी ? शकुन्तला के बिना यह आश्रम .....

प्रियंवदा:— बेचारी ! .....अरी ! हमारी बात जैसी भी हो। ..... शकुन्तला हमेशा सुखी रहे—इसी में हमारा सुख है न ?

अनसूया:— ज़रूर ! शकुन्तला अभी तक तात के आश्रम से लौटी नहीं।

प्रियंवदा :— अभी अएगी। ..... शायद नहाने गयी होगी।

[शकुन्तला का प्रवेश]

प्रियंवदा:— हज़ारों बरस की आयु हो ! अभी अभी तुम्हारी बात कह रही थी।

शकुंन्तला:— सखी.....

अनसूयाः— अच्छा, स्नान सुखपूर्ण रहा क्या ?

प्रियंवदाः— आज का स्नान अधिक सुखपूर्ण रहा होगा शायद !

शकुन्तलाः— तुम तमाशा कह रही हो। यहाँ तो मेरा दिल भर आता है। ..... प्रिय सखियो ! मेरे जाने के बाद आप लोगों से..... [रोने लगती है।]

अनसूयाः— यह क्या ? मंगल समय पर आँसू बहाती हो पगली!

[शकुन्तला को एक पीठ पर बिठाती है और तिलक लगाती है। प्रियंवदा आश्रम के अन्दर से अलक्तक रस ले आकर शकुन्तला के पैरों पर लगाती है।]

प्रियवदाः— आश्रम की इन साधारण वस्तुओं से हम तुम्हारी सुन्दर देह को विरूप कर रही हैं।

अनसूयाः— महल में जाने पर इन अंगों पर सोने की आभूषाएँ स्थान पाएँगी।

प्रियंवदाः— और उस स्वर्णिम स्वप्न भूमि में यह देवता-सी विराजमान होगी।

[दो मुनि कुमार वेश-भूषाएँ लेकर आते हैं।]

प्रियंवदाः— कुमार, ये वेश भूषाएँ कहाँ से मिलीं ?

कुमारः— तात की आज्ञा से वन-देवताओं ने प्रदान की हैं।

[मुनिकुमारों का प्रस्थान]

अनसूया —अच्छा, शकुन्तले ! तुम्हारे भाग्य पर हम भी कृतार्थ हुईं। तुम्हारे लिए तो ये आभूषण ही उचित होंगे।

प्रियंवदाः— इन वेश-भूषाओं को पहनी हुई शकुन्तला को देखने पर शायद राजा को शंका होगी कि यह वही पुरानी आश्रमकन्या है।

[सखियां शकुन्तला को वेश-भूषाएँ पहनाती हैं। शकुन्तल सिर नीचा किए बैठी हैं।

कण्व का शारंगरव तथा शारद्वत के साथ प्रवेश। सब उठ खड़ी हो जाती हैं।]

कण्वमुनिः— बेटी, कुछ ही समय के अन्दर तू बिछुड़ जाएगी। उसकी चिन्ता से मैं उदास हो जाता हूँ और मेरा गला भर आता है! यदि वन में रहनेवाले मुझ जैसे तपस्वियों की यह दशा हो तो कुटुम्बियों की क्या कहना?

प्रियंवदाः—शकुन्तले, लो यह दुकूल पहन लो।

[शकुन्तला दुकूल पहनकर परदा डालती है]

कण्वमुनिः—बेटी, तू अपने पति की सर्वप्रिय तथा सर्वमान्य पत्नी रहे और तेरे अति विश्रुत पुत्र भी हो! यह पिता की आशिष है। ..... शारंगरव, शारद्वत, क्या तैयार हैं?

दोनोंः—जी तैयार हैं।

[आकाशवाणी सुनाई पड़ती है]

आकाशवाणीः— "कदम कदम पर होवे पथ में
सरसी सरसिज से अभिराम॥

हरितद्रुमों की छाया से हो
हर पग शीतल सूरज घाम ॥

पथ की धूली बन जाये अति
मृदुल, तामरस का रज-सा ॥

बन जाये यह यात्रा इसकी
अति शुभ; पवन बने वश का ॥"

कण्वमुनिः— बेटी, यह वन-देवताओं की अनुमति है। अब तू उनकी वन्दना कर।

शकुन्तलाः— [हाथ जोडकर वन्दना करती है।] सखी, यद्यपि पति गेह जाने से मैं खुश हूँ तो भी तुम लोगों से अलग होकर मैं एक पग भी आगे बढ न सकती।

प्रियंवदाः— देखो, सारा तपोवन तुम्हारे विरह से उदास है। हरिणी चरती नहीं, मोर नाचना बन्द करते हैं और देखो ये वृक्ष-लताएँ तक आँसू टपकाती हैं।

शकुन्तलाः— सखी, इस वनज्योत्स्निका की खूब देख रेख करना, मेरे दीर्घापांग को मैं आपके हाथों सौंपती हूँ।

[वनज्योत्स्निका को गले से लगाती है।]

अनसूयाः— लेकिन..... ...हमको तुम किसके हाथों सौंपती हो? [रोती है।]

कण्वमुनिः— पगली, रोती क्यों है? तुम दोनों को ही शकुन्तला को शान्त करना चाहिए।

शारद्वतः—भगवन् ! यात्रा का मुहूर्त निकट आ चुका है। आप अपनी सन्देशा सुनाइये।

कण्वमुनिः—[सोचकर] दुष्यन्त से कहना "अपने वंश, कुल, कर्तव्य हम शमधनी लोग आदि के बारे में ठीक सोचविचार कर इसे सपत्नियों में तुल्य आदर के साथ स्वीकार कीजिए। बाद सब कुछ भाग्य के अधीन है और उसकी परवाह वधू-पक्ष के लोगों को नहीं है।" ..... बेटी, शकुन्तले ! अब दो बातें तुम्हारे लिये भी।

शार्ङ्गरवः—ज़रूर, नववधू को उपदेश देना अवश्यक है।

कण्वमुनिः—सुनो- "गुरुजनों की सेवा करना, सपत्नियों से प्रेम करना, निन्दा करने पर भी पति से न बिगड़ना आश्रितों पर वात्सल्य दिखाना, उन्नति में घमण्ड न करना—इन सबों से स्त्रियाँ अच्छी गृहिणियाँ बनती हैं, वर्ना कुटुंब के लिए बाधाएँ होंगी।"

शकुन्तलाः—जो आज्ञा पिताजी। [सखियों के पास जाकर] सखियो ! आओ गले से मिलो।

[दोनों सखियाँ शकुन्तला के गले मिलती हैं।]

प्रियंवदाः—शकुन्तले, एक बात याद रखना। यदि राजा को तुम्हारी याद न आयी तो उनकी दी हुई यह अंगूठी दिखा देना।

शकुन्तलाः—तुम्हारी यह शंका.....

अनसूया:—असीम प्रेम अनर्थकारी भी हो सकता है!

शारद्वत:—दिन चढ गया है, जल्दी कीजिए।

शकुन्तला:— [दुख से] पिताजी, इस आश्रम को मैं फिर कब देख सकूँगी ?

कण्वमुनि:— अपने राज्य तथा कुटुँब का भार जब तुम अपने पुत्र को सौंप दोगी, तब आराम करने के लिए पति के साथ यहाँ आ सकती हो। अच्छा, जाओ बेटी, तुम्हारा सर्व मंगल हो!

शकुन्तला:— पिताजी..... प्रियंवदे..... अनसूये.....

[मुनिकुमारों के साथ झट से प्रस्थान।

अनसूया तथा प्रियंवदा उसकी ओर देखती रहती हैं।]

कण्वमुनि:— शान्त हीओ पुत्रियो !..... मेरे साथ आओ।

दोनों:— तात ! शकुन्तला के बिना.....

कण्वमुनि:— कन्या हमेशा परायी वस्तु है।.....अच्छा ही हुआ। अब मुझे इतना चैन मिला जैसे किसी धरोहर को लौटा दिया हो।

[सबों का प्रस्थान।]

—यवनिका—

पांचवां दृश्य

दुष्यंत का राजमहल ।

[दुष्यंत सिंहासन पर आसीन हैं । विदूषक माढव्य पास ही स्थित है ।]

विदूषक:—यार, सुनिये तो, श्रीमती हंसपदिका अपना राग अलाप रही है। हा ! हा ! कितना मीठा राग। कितना मीठा स्वर !

[नेपथ्य से गाना सुनाई पडता है ।]

राजा:—चुप रहो कुछ देर। मैं सुनूँ वह गीत।

[गीत]

नेपथ्य से:—मधुप ! सुनो तुम आये थे इस
अमराई में मधु पीने को ।
अब तुम नलिनी से ही खुश हो
भूल गये हो लौट आने को ॥

राजा:—हा, हा ! रागपूर्ण गीत।

विदूषक:—साथ साथ अर्थ संपूर्ण भी !

राजा:—सो तो समझ गया। अच्छा, अब आप जाकर हंसपदिका का मतलब समझकर आइये। उससे कहना कि गाना अच्छा हुआ ।

विदूषकः—हाँ, हाँ, जाऊँगा .....

[माढव्य का प्रस्थान।

पहरेदार प्रवेश करता है।]

पहरेदारः—महाराज की जय हो !हिमालय की तलहटियों में रहने वाले कुछ तपस्वी कण्व मुनि का सन्देशा लेकर आये हैं। साथ एक सुन्दरी नारी भी है।

राजा;—धन्य ! धन्य !.....अच्छा, उचित रूप से उनका स्वागत करने के लिए पुरोहितों से कहो।

पहरेदारः—जो आज्ञा।

[पहरेदार का प्रस्थान]

राजाः—इस समय उनके आने का मतलब ? क्या उनके तप में कुछ बाधा पड़ी है ? या अन्य कोई अप्रतीक्षित घटना.....

[शकुन्तला के साथ मुनिकुमारों का प्रवेश। राजा उठकर उनका स्वागत करते हैं।]

राजाः—पधारिए, पधारिये।

मुनिकुमारः—राजा का मंगल हो !! [आशिष देते हैं।]

राजाः—यह सुन्दरी ?..... क्षमा करना ! पर-नारी को देखना तक पाप है।..... अच्छा, बताइये, काश्यप मुनि की क्या सन्देशा है ?

शारंगरवः—उन्होंने बताया है—"अपनी बेटी शकुन्तला को मैं महल भेज रहा हूँ। मुझे बड़ी खुशी हुई कि आप जैसे एक सुयोग्य वर शकुन्तला को प्राप्त हुआ है। आपके इस बंध पर मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ। इस गर्भवती को शीघ्र ही अपनी सहधर्मिणी बनाइये।" ..... साथ साथ उन्होंने यह सन्देशा भी दी है—"अपने वंश, कुल, कर्तव्य, हम शामधनी लोग आदि के बारे में ठीक सोच विचार कर इसे तपस्वियों में तुल्य आदर के साथ स्वीकार कीजिए। बाद सब कुछ भाग्य के अधीन है और उसकी परवाह वधू-पक्ष के लोगों को नहीं हैं।"

राजाः—आपका मतलब? क्या, इस मान्य स्त्री से मेरी शादी पहले हुई थी?

शारद्वतः—स्थान और धन का इतना घमंड?

राजाः—आप क्यों ऐसी बातें कर रहे हैं! मुझे याद तक नहीं कि ऐसी एक तापसी कन्या से मैं परिचित हूँ कि नहीं ... इसलिए पर-नारी का .....

शकुन्तलाः—(संकोच से) पर-नारी! हे, पौरव, आपने मुझे धोखा दिया है। .....शायद यह काम आपके ही लायक होगा।

राजाः—क्या तुम भी .....

शकुन्तलाः—शंका क्यों? आपको विश्वास दिलाने के लिए आपकी दी यह अंगूठी देखिए।

[अंगूठी लेना चाहती है, पर वह गायब है। शकुन्तला चकित हो जाती है]

राजा:—(ज़ोर से हंसकर) अच्छा हुआ! ... .. चाल चलने में भी होशियार हो!

शारद्वत:—(सोचकर) शायद शक्रावतार में अंगूठी नष्ट हुई होगी।

शकुंतला:—यह ईश्वरेच्छा है। .....पौरव, सुनिये, क्या आपको उन दिनों की याद नहीं जब हमने मालती निकुंज में बैठकर दीर्घापांग नामक मृगशावक को पानी पिलाया था

राजा:— मतलब निकालने के लिए स्त्रियां कैसी मीठी मीठी बातें बोल सकती हैं!

शकुन्तला:— दुष्ट! अपनी ही रीति दूसरों पर भी देखने का व्यर्थ यत्न करना मत। ..... इतना धोखा। ....

मैं पुरु वंश के ऐसे एक नालायक के जाल में क्यों फँस गयी थी! [रोने लगती है।]

शारंगरव:— राजन्! हम आश्रमवासी कभी झूठ नहीं बोलते।

शारद्वत:— शारंगरव, व्यर्थ की बातें क्यों करते हो? हमने अपना कर्तव्य निभाया। आओ, अब हम लौट जाएँगे

[जाने लगता है]

शकुन्तला:— क्या, आप भी मुझे छोड जाते हैं? उन्होंने तो मुझे धोखा दिया और आप भी .....

शारंगरव:— अब आश्रम में तेरे लिए स्थान नहीं है। .....पति के भवन में दासी बनकर रहना।

[दोनों का प्रस्थान।]

शकुन्तला:— भूमी माता! आपके उदर में मुझ अभागिनी के लिए स्थान नहीं?

[झट से दौडती हुई बाहर जाती है ।

राजा चिन्ता में विलीन हो टहलते हैं ।]

दूत:— [प्रवेश कर] राजा की जय हो ! आपकी यह अंगूठी एक धीवर के हाथों से मिली है ।

[अंगूठी निकाल कर देता है ।

राजा गौर से अगूठी को देखते हैं और बेचैन हो जाते हैं ।]

राजा:— यह कहाँ से मिली ? कैसे मिली ?

दूत:— उसको एक मछली की पेट से मिली थी । शक्रावतार से ही उसने वह मछली पकडी थी ।

राजा:— [स्वयं] शकुन्तला ! ..... शकुन्तला ! ..... कण्व की पुत्रि शकुन्तला ! ..... [सिपाही से] सिपाही ! अभी जाकेर उस महिला को आदर के साथ बुला लाओ जो कुछ देर पहले यहाँ से चली गयी थी ।..... और साथ साथ उस मछुँए को मुँहमाँगा इनाम देने का भी प्रबन्ध करो ।

[दूत का, आदर के साथ प्रस्थान ।

माढव्य का प्रवेश]

माढव्य:— सुना यार कुछ ? कैसी अजीब बात ? अभी अभी सुना कि किसी एक औरत को एक अप्सरा लेकर आकाश की ओर गयी । आखिर इन अप्सराओं को मानवियों से क्या काम ?

राजा:— कहो, कहो। औरत कौन थी?

माढव्य:— सुना कि वह औरत महल से रोती हुई बाहर जा रही थी। यार, क्या यह सच है?

राजा—हाँ यार सच!

माढव्य:— (आश्चर्य से) सच?

राजा:—हाँ, सच! जानते हो वह कौन थी? वह थी शकुन्तला शकुन्तला! कण्वाश्रम की शकुन्तला!..... [गद्गद् के साथ] वह यहाँ आयी थी। ... लेकिन मैं ने ..... मैं ने बडा ही अन्याय किया!..... वह यहाँ आयी थी। लेकिन मैं ने उसको नहीं पहचाना। बडा ही अन्याय किया ..... बडा ही अन्याय!

[दुःख की अधिकता के कारण दोनों हथेलियों से मुख छिपा रखता है।]

—यवनिका—

छठा दृश्य

दुष्यंत के महल का माधवी-मंडप ।

[दुष्यंत चित्रपटी पर शकुन्तला का चित्र खींच रहा है । साथ ही माढव्य है ।]

विदूषक:— वाह ! वाह !! कितना सुन्दर चित्र है यह ।

राजा:— तुम तमाशा करते हो और मैं तो यहां दुख की आग में जल रहा हूँ । वास्तव में मैं इसी की चिंता में व्याकुल हूँ । क्षण भर के लिए भी चैन नहीं मिलता ।

विदूषक:— अच्छा हुआ ! दिन तो कितने बीत गये ! अब भी आप क्यों विकल हो रहे हैं ? उसको तो कोई आकाश चारी ले उड गया है न ?

राजा:— ऐसी बात नहीं । वह तो मेनका की बेटी है । शायद अपनी बेटी की दशा से विकल होकर मेनका ने किसी अप्सरा को भेजा होगा । माँ-बाप कब तक अपनी संतान का दुख सह सकेंगे !

विदूषक:— जो होना चाहिए, वह होगा ही । यह अंगूठी ही उसका प्रमाण है न ?

राजा:—हाँ, हाँ, इसने ही सब कुछ कर दिया है। उसकी ऊँगली में यह कैसी विराजी होगी।

विदूषकः—उसकी उँगली से यह अंगूठी मछुए के हाथ कैसे आयी ?

राजाः—शचीतीर्थ की वन्दना करते समय यह शकुन्तला की उँगली से पानी में गिर गयी। ..... ऐसा लगता है कि इस अंगूठी को गालियाँ सुना दूँ।

विदूषकः—आप तो शायद पागल बन गये हैं।

राजाः—पागल क्यों नहीं बनूँ! देखो यह चित्र ... इस में वह कितनी सुन्दरी दीख पडती है! अब तक यह चित्र पूरा नहीं हुआ। इसमें और बहुत कुछ अब खींचना है।

विदूषकः—क्या क्या खींचना चाहते हैं ?

राजाः—मालिनी नदी की सुन्दर धारा और उसमें विचरने वाले मराल-मिथुनों को चित्रित करना है। हरिणों से विराजमान हिमालय की सुन्दर तराइयों को अंकित करना है। प्रिय के सींग की नोक पर अपनी आँख रगडनेवाली हरिणी को उसके प्रिय के ही साथ अंकित करने से ही यह चित्र पूर्ण हो जाएगा।

विदूषकः—वह तो चाहिए ही।

राजाः—एक और बात भूल गया।

विदूः—वह क्या ?

राजाः—शिरीष पुष्पों से बने कर्ण-फूल और मृणाल-सूत्र की बनी मालाएँ भी प्रेयसी को पहनाना चाहिए।

विदूषक:—यह इतनी डरी क्यों है ? [मुख पर ध्यान से देखकर] हाँ, समझ गया ! ... एक भ्रमर उसके मुख पर मंडरा रहा है।

राजा:—क्या? भ्रमर मेरी शकुन्तला को तंग कर रहा है ? अबलाओं पर आक्रमण करनेवाला यह अत्याचारी कौन ?..... अरे, पुष्पों के मेहमान ! तुम यहाँ क्यों आये हो ? मेरी आज्ञा का पालन क्यों नहीं करता ?

विदूषक:—अच्छा हुआ ! ..... यार, ओ यार ! सुनो तो ज़रा ! ..... ओजी , होश में आओ तो , यह चित्र है , निर्जीव चित्र ! (हँसता है।)

राजा:— [होश में आकर] आपने मुझे क्यों जगा दिया ? मैं तो प्रत्यक्ष दर्शन का सुख अनुभव कर रहा था।

[दूत का प्रवेश]

दूत:—राजा की जय हो ! अमरेन्द्र के सारथी मातलि पधारे हैं।

राजा:— अच्छा, आदर के साथ आने दो।

[दूत का जाना।]

राजा:—माढ़व्य, मातलि आरहे हैं। इस चित्र को कहीं छिपे रखो।

[माढव्य चित्र के साथ चित्रपट्टी तथा अन्य—वस्तुओं को लेकर एक ओर से जाता है, दूसरी ओर से मातलि प्रवेश करता है।]

राजा:— [उठ खडे होकर सादर] आइये, आइये, । कैसे आना हुआ ?

मातलि:— इन्द्र ने ही मुझे आपके पास भेजा है।

राजाः— कोई खास खबर ?

मातलिः— कालनेमी के दुर्जेय नामक कुछ बेटे हैं। उनका गर्व नाश करने का भार आप पर सौंप दिया गया है। इसलिए आप अभी अपने अस्त्र-शस्त्रों को धारण कर देवराज के ही इस रथ पर चढकर अमरावति आइये।

राजाः— मातलि, महेन्द्र की इस आज्ञा से मैं अनुग्रहीत हुआ। आइये, महल से होकर हम चलेंगे।

[दोनों का प्रस्थान।]

—यवनिका—

सातवाँ दृश्य

हेमकूट गिरि।

[राजा दुष्यन्त तथा मातलि]

राजा:—तो यह है हेमकूट गिरि! ..... जब हम दोनों इधर से होकर गुज़रे थे, तभी मैं ने निश्चय किया था कि लौटते वक्त यहाँ उतरूँ।

मातलि:— यह है किंपुरुष वर्ष हेमकूट गिरि। यहाँ मरीची का पुत्र प्रजापति कश्यप तप कर रहे हैं।

राजा:—सुरासुरों के पिता का यह वासस्थान शांतिप्रद है ही। हर कहीं पवित्रता और प्रशांतता।

मातलि:—देखिए, एक ऋषि सूरज की ओर मुख किए तप कर रहा है। कैसा निश्चल बैठा है। मुख में कैसी शोभा झलकती है!

राजा:—हा, हा! यह देखकर ही मैं धन्य हुआ।.....इन्द्र-पिता से मिलूँ तो .....

मातलि:—ज़रूर! उसके लिए प्रबंध करूँगा! शायद वे दीक्षा दे रहे होंगे।

राजा:—[एक ओर देखकर] देखिए मातलि। एक सुन्दर बालक शेर के बच्चे से खेल रहा है। कैसा निडर बालक है!... यह क्या? कोई मुनिकुमार आकर शेर के बच्चे को उससे

अलग करता है और एक मिट्टी की बनी चिडिया को दे देता है।

मातलिः—हाँ! यहाँ किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होती। लो, वे दोनों इस ओर आ रहे हैं। अच्छा, महाराज, मैं अभी आया।

[मातली का प्रस्थान]

राजाः—न जाने मेरा मन इस बालक पर क्यों आकृष्ट होता है।

[सर्वदमन तथा एक मुनिकुमार का प्रवेश।]

सर्वदमनः— [चिढकर] मुझे शेर का बच्चा चाहिए। अभी ला दो...

कुमारः— अरे, यह मूर्ति अच्छी है न?

सर्वदमनः— नहीं .....

राजाः— हे, मुनिकुमार! इस बालक का क्या नाम है?

कुमारः— सर्वदमन।

राजाः— इसका नाम भी उचित ही रखा गया। ...अरे सर्वदमन, सुनो तो?

सर्वदमनः— [गंभीरता से] क्या है?

राजाः— शेर के बच्चों को तंग करोगे तो शेरनी आकर आक्रमण करेगी।

सर्वदमनः— हूँ! मुझ पर उसकी एक न चलेगी। ..... नहीं तो आप शेरनी को बुलाइये; हम देखें।

राजा:— वास्तव में यह मुनिकुमार नहीं हो सकता। [मुनिकुमार से] हे कुमार, क्या यह भी मुनिकुमार है ?

कुमार:— नहीं। यह पूरुवंश का है।

राजा:— [स्वयं]क्या मेरे ही वंश का ? .....शायद किसी और का होगा।

सर्वदमन:— मुझे शेर का बच्चा चाहिए।

राजा:— उससे बढकर यह मूर्ति कितनी सुन्दर है ! [सर्वदमन को प्रतिमा दिखाते हुए] देखो, यह शकुन्त-लावण्य।

सर्वदमन:— मेरी माँ ? कहाँ हैं मेरी माँ ?

कुमार:— [हँसकर] अपनी माता का नाम इसके लिए लड्डूबन गया है।

राजा.— माता का नाम ? क्या है उनका नाम ?

कुमार:— शकुन्तला।

राजा:— [कुछ देर सोचकर] शायद दूसरी एक भी हो सकती है।

[नीचे ज़मीन पर देखता है और एक तावीज़ हाथ में लेकर]

राजा:—कुमार, यह लो एक तावीज़। शायद तुम दोनों में एक का होगा।

कुमार:—ना, ना ! नीचे डाल दीजिए, जल्दी।

राजा:—क्यों ?

कुमार:—यह तो आश्चर्य की बात है! यह तावीज़ सर्वदमन, इसकी माँ और पिता इन तीनों को दिखाई पडेगा। ही यदि और किसी को दिखाई भी पडता तो इन तीनों के सिवाय और कोई भी इसको छुआ तो तत्क्षण उसका अन्त होगा।

राजा:—तो यह व्यर्थ की चिन्ता क्यों? यह मेरा ही बेटा है।

कुमार:—बेटा! आपका बेटा?

सर्वदमन:—नहीं। मुझे अम्मा ही "बेटा" कहकर पुकराती है।

राजा:—नहीं लाल, तू मेरा ही बेटा है। [उसको पकडकर गले लगाते हुए] मेरा बेटा!

[सर्वदमन दुष्यंत के हाथों से अलग होकर भागता है।

तापसी के वेश में शकुन्तला का प्रवेश।]

सर्वदमन:—[अम्मा, कहकर निकट जाता है] अम्मा, यह आदमी मुझे बेटा कहकर पुकरता है।

[शकुन्तला, दुष्यंत को पहचानती है फिर भी संयमित स्वर में।]

शकुतला:—आपने ऐसा क्यों किया था आर्य?

राजा:—[शकुन्तला का शब्द सुनकर]कौन शकुन्तला! [उसके निकट जाकर सिर झुकाते हुए] शकुन्तला, माफ करना। ... किसी अज्ञात शक्ति के प्रभाव के कारण ही मुझे तेरी याद न आयी थी।

शकुन्तलाः—अच्छा, आर्य! आपने कोई अपराध नहीं किया। सब मेरा दुर्भाग्य। [राजा की उंगली में अंगूठी देखकर] आर्य, यह तो वही पुरानी अंगूठी है न?

राजाः—हाँ इसको पाकर ही मुझे तेरी याद आयी थी। मुझे शंका है कि शायद इससे संबंधित कोई बात होगी।

शकुन्तलाः—हाँ। एक शाप है। लेकिन यहाँ पहुँचने तक मुझे उसका पता नहीं था। यहाँ आने पर देव पिता ने अपने तपोबल से जानकर सब बातें बता दीं। वही शाप हमारी इस दशा का एक मात्र कारण है।

राजाः—किसका शाप?

शकुतलाः—दुर्वासा मुनि का शाप। ..... आपके विरह से मैं भूल बैठी थी। तब दुर्वासा मुनि वहाँ आये। मैं ने उनको देखा तक नहीं। इसलिए उन्होंने क्रोध में आकर शाप दिया कि तुम जिसकी याद में भूल बैठी हो वह व्यक्ति तुझे भूल जाये। यही कारण है।

राजाः—आखिर सब ठीक हुआ! अच्छा, अब लो, यह अंगूठी तुम्हारी ही उंगली में रहे।

शकुंतलाः—नहीं, मैं उसपर विश्वास नहीं करती। आप ही पहन लीजिए।

सर्वदमनः—अम्मा, ये कौन हैं?

शकुंतलाः—ये तेरे पिताजी हैं बेटा।

राजा:—आओ बेटा..... [गले लगाकर] मेरे लाल !

मातलि:—[प्रवेश कर] अच्छा, आखिर पत्नि और पुत्र मिल गये। बडा ही सौभाग्य है ।

राजा:— मित्रों की सहायता से ही ऐसा सौभाग्य प्राप्त होता है ।

मातलि:— अमरों के लिए अदृश्य कौनसी वस्तु है ?.....जो भी हो, आप आइये, कश्यप ने दर्शन के लिए अनुमति दी हैं।

राजा:— धन्य हुआ ! ..... शकुन्तला, मेरी इच्छा है कि तुम सर्वदमन की उँगली पकडती हुई आगे आगे चलो। हम सब एक साथ देव-पिता से मिलकर धन्य बन जाएँगे।

शकुन्तला:—मुझे शरम आती है। आपके साथ गुरु-निकट कैसे जाऊँ ?

राजा:— खुशी के अवसर ऐसा ही करना चाहिए !

मतलि:— वे हमारी प्रतीक्षा में हैं। आइयें, चलें।

[मातलि आगे, उसके पीछे शकुन्तला सर्वदमन की ऊँगली पकडे हुए और सबों के पीछे दुष्यंत- इस रीति में सब लोगों का प्रस्थान ।

—यवनिका—

प्रश्न

१. दुष्यंत के कण्वाश्रम में आने से लेकर लौट जाने तक का कथांश लिखो।

२. शकुन्तला को क्या शाप मिला और क्यों ?

३. कण्व ने शकुन्तला को क्या क्या उपदेश दिये ?

४. दुष्यंत को कैसे शकुन्तला की याद आयी ?

५. शकुन्तला और दुष्यंत फिर कैसे मिले ?

६. एक एक दृश्य का सारांश अपने शब्दों में लिखो।

७. इस नाटक में अनसूया और प्रियंवदा का क्या स्थान है ?

पात्र परिचय

पुरुष:—

दुष्यंत— अयोध्या का राजा।
कण्व— शकुन्तला का पोषक पिता।
माढव्य— दुष्यंत का विदूषक।
मातलि— इन्द्र का सारथी।
शारंगरव— कण्व का शिष्य
शारद्वत— ,,
सर्वदमन— दुष्यंत का बेटा।
सारथी— दुष्यंत का सारथी।
मुनिकुमार, दूत, सिपाही आदि

स्त्री:—

शकुन्तला— कण्व की पोषित पुत्री।
अनसूया—शकुन्तला की आत्म-सखी।
प्रियंवदा— ,,

शब्दार्थ

दृश्य १

मृग = हिरण।

इशारा करना = किसी की ओर लक्ष्य करना।

प्रस्थान = रंगमंच से चला जाना।

आड = छिपने का स्थान।

कमर = कटिप्रदेश।

घड़ा = कुंभ।

शुक्रिया = कृतज्ञता।

पौरव = पुरुवंश का अंग।

कौशिक = विश्वामित्र।

काश्यप = कण्व।

नेपथ्य = रंगमंच के पीछे का स्थान जहाँ नाटक के पात्र वेश धारण करते है।

सावधान = खबरदार।

दृश्य २

हर दम = हर निमिष।

सौंपना = अर्पण करना।

मुलाकात = मिलन।

चार आँखें होना = प्रेम होना

उलझाना = फँसाना ।

सुलझाना = उलझन से मुक्त करना ।

मुड़ना = पीछे की ओर देखना ।

फँसना = उलझना ।

नादान = अज्ञान ।

बीमारी = रोग ।

इलाज = चिकित्सा ।

परेशानी = अस्वशता ।

मुसीबत = विषमता ।

बाँट लेना = विभक्त कर लेना ।

बोझ = भार ।

हलका होना = लघु होना ।

जूही = मालति फूल ।

सहारा = आश्रय ।

रसाल = आम ।

थाली = तश्तरी ।

मत = राय ।

नाखून = नख ।

अंगज़ = कामदेव, मदन

चट्टान = शिला

मज़बूर = निर्बंधित, प्रेरित ।

चिढना = क्रोधित होना ।

सिर नवाना= तमस्तक होना ।

मृग शावक = हरिण का बच्चा ।

दृश्य ३

अंगूठी = मुद्रिका, मुंदरी ।

पैरों तले = पैरों के नीचे ।

ठुकराना = कुचलना ।

गव = मान ।

हालत = स्थिती ।

समझाना बुझाना = सान्त्वना देना, दिलासा देना ।

माला गूँथना = माला बनाना ।

खातिरदारी = आदर-सत्कार ।

राह देखना = किसी की प्रतीक्षा करना ।

लंका जीतना = बिषम कार्य में सफल होना ।

निशानी = यादगारी के लिए दी हुई चीज़ ।

पगली = पागल स्त्री ।

जरा = कुछ ।

गले से लगाना = आलिंगन करना ।

आश्वास दिलाना = सान्त्वना देना ।

दिल भर आना = दुःख होना।

अलक्तक रस = लाल वर्ण का एक रस जो पैरों पर लगाया जाता है।

विराजमान होना = शोभित होना।

बिछुड़ जाना = अलग होना।

गला भर आना = गद्गद्।

सरसी = तालाब।

अभिराम = मनोहर।

हर पग = एक एक कदम।

घाम = धूपा।

तामरस=लाल कमल।

रज-सा = पराग के समान।

वश का = अनुकूल।

मोर = मयूर।

आँसू टपकाना = अश्रु बहाना।

देख रेख करना = रक्षा करना, पालना।

शमधनी = तपस्वी।

दिन चढना=शाम होते रहना।

झट से = जल्दी।

परायी = दूसरों की।

धरोहर = वहचीज़ जो किसी दूसरे के पास रखी गयी है।

दृश्य ५

आसीन=बैठा हुआ ।

यार = दोस्त।

राग अलापना = गीतगाना।

अपना राग अलापना = अपनी ही बात कहते रहना ।

अमराई = आम की वाटिका।

पहरेदार = रक्षा करनेवाला सेनानी।

तल्हटी = तराई,घाटी

पधरिए = आ विराजिए

गायब = अदृश्य।

ज़ोर से = उच्च स्वर में।

मतलब निकालना = लाभ उठाना

नालायक=अयोग्य।

धीवर = मछुआ

बेचैन होना = अस्वस्थ होना ।

मुंहमाँगा इनाम = इच्छानुसार मांगा हुआ पुरस्कार

प्रबंधकरना=आयोजन करना, व्यवस्थ करना।

अजीब = आश्चर्य।

दृश्य ६

चित्रपटी = चित्र खींचने का तख्ता।

गालियां सुनाना =डाँटना, बुरा-भला कहना।

दीख पडना = आंखों में पडना ।

मराल-मिथुन = हंसदंपति ।

तराई = घाटी ।

सींग= मृगों का शृंग ।

नोक = पैना अग्र ।

रगडना = घसना ।

कर्णफूल = कान में धरने का आभूषण ।

मृणाल सूत्र = कमल–पुष्प के नाल के अन्दर का तन्तु ।

मंडराना = चारों ओर घूमना ।

मेहमान = अतिथि !

होश में आना = बोधावस्था में होना ।

कश्यप = देवों और दानवों का पिता ।

झलकना = शोभित होना ।

दीक्षा देना = ज्ञानोपदेश करना ।

निडर = निर्भय ।

शेरनी = सिंहनी ।

शकुंत = चिडिया ।

लड्डू बन जाना = अत्यन्त आस्वाद्य पूर्ण होना ।

तावीज़ = यंत्र मंत्र कवच ।

लाल = प्यारा ।

संयमित = नियंत्रित ।

शरम = लज्जा ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
3 [संपादकीय]	10	महत्वकांक्षा	महत्वाकांक्षा
13	6	थोली	थाली
14	6	आराम	आशय
14	6	प्रतिम	प्रीतम
14	17	बठते है	बैठते हैं
15	5	लिढकर	चिढकर
19	8	जा प्रट	जा पडी
20	1	चौथा दृश्य	चौथा दृश्य
23	6	प्रवेशा ।	प्रवेश
26	12	शान्त ही ओ	शान्त होओ
27	8	नेषथ्य	नेपथ्य
28	5	सन्देशा	सन्देश
29	8	तपस्वियों में	सपत्नियों में
32	7	कव ाश्रम	कण्वाश्राम
35	2	मूख	मुख
36	4	अस्त्र	अस्त्र
40	2	पिखाई पडेगा ही।.....	दिखाई पडेगा ही।.....
40	11	दुष्यंन	दुष्यंत
40	14	पुकरता है	पुकारता है

Printed at

Raj Printers Trivandrum

MOHAN PUBLICATIONS

(HINDI)

Standard VIII

1. Dhanush Yagna
2. Sri Narayana Guru
3. Shatru Tadha Mitra
4. Phool Aur Taare
5. Viphal Prem

Standard IX

1. Radio
2. Gouri Shankar
3. Eesa Maseeh
4. Shamadan
5. Bachom Ka Bharat

Standard X

1. Ek Doure Ki Kahani
2. Kavivar Ravindranath
3. Shakuntala
4. Vyomayan Ki Katha
5. Sadik

Standard XI

1. Veluthampi
2. Shivaji
3. Sanskriti Ka Ithihas
4. Nala Chritham
5. Do Kahaniyam

APPLY TO

K. PRABHAKARAN NAIR

KAVUVILA HOUSE

JEGATHY, TRIVANDRUM-1.

Cover Printed at the Jayaram Press, Trivandrum.